'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १६ | वाराणसी, गुरुवार, १२ फरवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

काया (राज०) ३०-१-'५९

जीवन ज्योति के द्रष्टा बापू का मार्ग न छोड़े !

आज मेरा गला काम नहीं कर रहा है, फिर भी दो शब्द कहूँगा। महात्मा गांधी के प्रयाण को ग्यारह साल हुए। तीस जनवरी का दिन था। संध्या का समय। वे हमारे बीच से उठ गये। उसी दिन शाम को जब वह खबर मुझे मिली, तब मैं पवनार, परंधाम में था। सुनने पर परमेश्वर का स्मरण हुआ और उसी स्मरण में मैं उस दिन लीन रहा। दूसरे दिन से धीरे धीरे, खयाल आने लगा कि हर रोज सृष्टि में असंख्य घटनाएँ होती हैं, उनका कोई असर नहीं होता। मानव-समाज की कोई घटना हो तब भी वह कोई खास परिणाम नहीं करती है। पर मानव को अपना एक खयाल होता है और उसकी अपनी एक सृष्टि होती है उसी का ऐसा असर होता है। तो मैं सोचने लगा कि गांधीजी के जाने के बाद हमारे जीवन पर उसका क्या परिणाम होता है? महापुरुष जब शरीर में रहते हैं तब उनकी निरंतर कोशिश यह रहता है कि शरीर से मुक्त होकर सबके साथ घुल मिल जायँ, जैसे दूध में शक्कर घुल मिल जाती है, दूध का स्वाद बढ़ाती है, पर शक्कर स्वयं छिप जाती है। वैसे ही समाज के जीवन का स्वाद बढ़ाने में स्वयं लीन हो जाय, ऐसा प्रयत्न महापुरुषों का रहता है।

परमेश्वर की हिन्दुस्तान पर बड़ी कृपा रही अनादि काल से आज तक अनेक महापुरुष यहाँ आये और यहाँ के जीवन को कुछ न कुछ समृद्ध बनाकर गये। महापुरुषों की अंतिम और आगे आनेवाले महापुरुषों की श्रेणी में प्रथम गिने जायेंगे वैसे गांधीजी थे। पुराने महापुरुषों ने जो कुछ हमें दिया उसका सार हमने गांधीजी में पाया। आगे जो असंख्य महापुरुष परमेश्वर भेजने वाला है उनका बीज हमने उनमें पाया, पुराने प्रयत्नों का फल पाया और भविष्य की आशाओं का बीज पाया। इस तरह एक संधिकाल में वे थे। और उनके जीवन में भूत और भविष्य का संधान हुआ था। वैसे हर किसी महापुरुष के विषय में ऐसा नहीं कह सकते हैं। हर एक की अपनी अपनी विशेषता होती है। परंतु पुरानी परंपरा का फल और नयी परंपरा का बीज जिनके जीवन में एकत्र होता है ऐसे बिरले ही होते हैं, गांधीजी उन्हीं बिरलों में से एक थे। जब वे शरीर में थे तब व्यापक बनने की कोशिश करते थे। जब शरीर छोड़ कर चले गये तो अब विशिष्ट बनने की वे कोशिश कर रहे हैं। व्यापक तो वे बन गये हैं, किन्तु अब वे विशिष्ट मनुष्य को प्रेरित करके अपने अवशिष्ट महान संकल्पों को पूरा कराना चाहते हैं। शरीर में थे तब वे विशिष्ट थे और व्यापक बनने की कोशिश करते थे। जब शरीर छोड़ा तब व्यापक बन गये और विशिष्ट बनने की कोशिश कर रहे हैं ऐसा मुझे अनुभव हुआ है।

फिर मैं अपने लिए सोचने लगा कि क्या मुझे भी अपनी नीति-रीति में कुछ परिवर्तन करने की जरूरत है? जीवन की नीति बहुत पहले ही बन चुकी थी उसमें कोई परिवर्तन का सवाल ही नहीं था। उस पर तो कायम ही रहना था। परंतु रीति में कोई परिवर्तन करने की जरूरत है क्या? ऐसा सोचने लगा। अभी मैं जो बोल रहा हूँ वह सामने जो श्रोता बैठे हैं उनको ध्यान में रख कर नहीं बोल रहा हूँ। शायद वे मेरी बात को पकड़ नहीं सकेंगे। और न समझ ही सकेंगे। क्योंकि आज ऐसी घटना हुई है जिससे कुछ खयाल आता है कि हम कहाँ हैं? उस घटना का जिक्र करके मैं आगे बढ़ूँगा।

गांधीजी के बाद हमने क्या किया?

आज सुबह यहाँ आते ही कुछ भाई बहनें, इकट्ठी हुई थीं। जो देहाती बहनें थीं उनको मैंने नजदीक बिठा दिया और उनमें से एक प्रौढ़ बहन से पूछा, क्या गांधीजी का नाम तुमने सुना है। उसने 'हाँ' कहा। फिर पूछा, आज कल वे कहाँ रहते हैं? उसने बताया कि कहीं शहर में रहते होंगे। पूछा, उदयपुर की तरफ रहते हैं या जयपुर की तरफ? तो बोली, उदयपुर की ओर। खैर, फिर एक जवान से पूछा। वह करीब बीस साल का होगा। भाई गांधीजी का नाम सुना है? तो उसने 'ना' कहा। यह जो आज घटना हुई इसका जिक्र मैंने यहाँ इसलिए किया कि समाज के इस स्तर को ध्यान में रख कर तो मुझे दूसरी ही बातें करनी होंगी परंतु मैं वैसा नहीं कर रहा हूँ।

आज गांधीजी का प्रयाण दिन है। मैं उनके सामने बोल रहा हूँ। वे यहाँ उपस्थित हैं। उनको साक्षी में कुछ विचार मैं प्रकट कर रहा हूँ। जो गहरा अज्ञान आज यहाँ प्रकट हुआ वही बुंदेलखंड के १९५१ में एक गाँव में प्रकट हुआ था। ऐसा ही सवाल गांधीजी के बारे में पूछा था। उस समय गांधीजी को गये

३ वर्ष हुए थे। परंतु वहाँ लोगों को कोई पता ही नहीं था। खैर, यह तो आठ साल पहिले की घटना है। अब तो गांधीजी को गये ग्यारह साल हो गये हैं और उदयपुर के नजदीक दस मील पर ही लोगों की यह हालत है। हम बहुत दूर घने जंगल में भी नहीं हैं, मोटर रोड पर ही हैं। बुंदेलखंड में तो मोटर रोड भी नहीं थी। वहाँ भी यही हाल था। आज यहाँ के बीस साल के जवान को भी मालूम नहीं है और पचास साल की बहिन को भी मालूम नहीं है। उसका जिक्र मैं अभी अधिक नहीं करना चाहता हूँ। इतना सा उल्लेख भी इसलिए किया कि भारत क्या है यहाँ कितना गहरा अज्ञान है, इसका भान हो। यह नहीं कि गांधीजी का नाम कोई जानता हो तो बड़ा ज्ञानी हो गया तथा कोई न जानता हो तो वह बिल्कुल गया बीता हो गया और उसके जीवन में कुछ सार नहीं है। गांधीजी के बारे में जानने की जिम्मेवारी उस पर है ऐसा भी नहीं है। परंतु हम जो विचारों के प्रचारक हैं, उन्होंने गांधीजी के जाने के बाद क्या किया इसका थोड़ा मूल्यांकन इस पर से हो जाता है!

गांधीजी के अधूरे संकल्पों की पूर्ति में

उन दिनों स्वराज्य मिल गया था। किन्तु उसमें गांधीजी की आशाएँ उतनी सफल नहीं हुई थी, न खादी ग्रामोद्योग के बारे में, न शांति स्थापना के बारे में, न अहिंसा के विचार में। याने उनके जीवन के जो दो बड़े पहलू थे उन दोनों में उनको असंतोष रहा। इसका जिक्र प्यारेलालजी की उस अद्‌भुत किताब में देखने को मिलता है जो उन्होंने १९५८ में प्रकट की है। गांधीजी चाहते थे कि जो उनके साथी कहलाते थे, वे एकत्र हों और जो अलग अलग सेवायें चलती थीं उनको एकत्र करके भारत में अहिंसक शक्ति निर्माण करें एवं आजाद भारत को गलत रास्ते पर जाने न दें। इसलिए उन्होंने सेवाग्राम में एक संमेलन करने का सोचा था, पर वह क्रियान्वित होने से पूर्व ही वे गये। उनकी अनुपस्थिति में बहुत सारे उनके निकटवर्ती साथी और सेवक, सेवाग्राम में एकत्रित हुए थे। उस समय हमको बोलने के लिए कहा गया था। मैंने कहा था कि मैं यहाँ बहुत ज्यादा बोलना नहीं चाहता हूँ क्योंकि हम एक दूसरे को पहचानते भी नहीं हैं। हम सब मिले हैं, तो आगे क्या करेंगे यह सब सोचेंगे। मैं भी सोचूँगा। आज तो अपना यह प्रथम परिचय ही रहा है। यहाँ जितने एकत्र हुए हैं उन सबमें मैं सबसे ज्यादा अपरिचित हूँ। जबतक गांधीजी थे तबतक मैं एकान्त साधना में था। अध्ययन अध्यापन, देहातियों की सेवा, आश्रमवासियों की सेवा, ध्यान धारण, भक्तियोग की साधना, ज्ञान चिन्तन, इत्यादि मेरा लगा तार तीस साल चलता रहा था। इसलिए बहुत लोगों से मैं अपरिचित था। कुछ लोगों के नाम से भी और बहुतों के रूपों से भी ऐसा अत्यन्त अपरिचित मैं हूँ और मैं यहाँ ज्यादा सुनना चाहता हूँ, और भी जो बातें मैंने कही थी उनका जिक्र करने का कारण नहीं है। लेकिन तब मैं बिल्कुल अपरिचित था। सिर्फ चन्द भाई जो वर्धा में आते थे, कभी मिलने आते थे, कभी बापू उनको मेरे पास भेजते भी थे उनसे मैं परिचित था। बाकी बहुतों से अपरिचित ही था। ऐसी हालत में वहाँ माँग हुई कि शरणार्थियों की समस्या में हम मदद करें। वह मान्य करके जाजूजी और जानकी बहन (माताजी) को साथ लेकर मैं निकल पड़ा। इधर-उधर देख लिया, हिन्दुस्तान में घूमकर देखा, हद दर्जे की मायूसी छायी है जिसे हम समग्र निराशा कह सकते हैं। वह रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं में छायी हुई थी। बिल्कुल घोर निराशा थी। सब समझते थे कि अब तो अपना विचार समाप्त ही है कुछ चलेगा नहीं। एक युग समाप्त हुआ, दूसरा युग शुरू हुआ है। उस नये युग में कुछ खास चलेगा नहीं। अहिंसा का विचार पनपेगा नहीं।

फिर मैं वापस गया, पवनार में लौटने पर कांचनमुक्ति का प्रयोग शुरू कर दिया। उस समय निश्चय कर लिया था कि यह प्रयोग समाप्त करके मैं भारत की सेवा के लिए निकल पड़ूँगा—पैदल। कब निकल पड़ूँगा नहीं कह सकता था। एक डेढ़ साल तो वह प्रयोग मेरे लिए जरूरी था। नये युग के लिए भी जरूरी था। कांचन मुक्ति के प्रयोग के बिना नये युग का आरम्भ ही नहीं हो सकता है। बीच में सर्वोदय संमेलन में जाना पड़ा, मैं जाना नहीं चाहता था, पर जाना पड़ा। लेकिन जब निकला तब पैदल ही निकला। लोगों के मन में कोई यह ख्याल नहीं था, इससे बहुतों के दिल को कुछ विचित्र-सा लगा। लेकिन नजदीक के जो लोग थे उन्होंने सोचा कि शायद इसमें से कुछ चीज निकलेगी।

तब से यह यात्रा लगातार शुरू है। और महात्मा गांधीजी की उपस्थिति में मैं यहाँ बोल रहा हूँ। अन्तर आत्मा साक्षी है कि जिस संकल्प से निकलता हूँ उस संकल्प की पूर्ति के सिवाय दूसरा कोई विचार नहीं आता है। जितना भी काम किया जा रहा है उतना कुल का कुल उस संकल्प की पूर्ति के लिए किया जा रहा है। इस समस्त कार्यक्रम में मैं बापू को निरन्तर अपने साथ पाता हूँ।

जिस नाम की दुहाई दी जाती है, उसका काम कहाँ हो रहा है?

अब यह हमारे लिए बहुत कुछ चिंतन करने लायक समय आया है। आज मैं एक टेकरी पर, एक टिले पर चढ़ा था। लोगों को कुछ खयाल नहीं था। बीमार भी मैं हूँ लेकिन जिन टीलों पर और डूंगर पर शायद राणा प्रताप घूमे थे, वे मुझे ऊपर खींच रहे थे। एक दिन तो एक जाहिर सभा में राणा प्रताप की ही मैंने प्रार्थना की है कि हे राणाजी, आप जिस किसी कोने में बैठे हों मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप भगवान से प्रार्थना कीजिए कि आपकी इस भूमि में प्रताप का कार्य नहीं हो रहा है। कार्यकर्ताओं का लग-भग अभाव सा है। आपके नाम को दुहाई दी जाती है। आप परमेश्वर से प्रार्थना कीजिए कि आप का काम आगे चलाने के लिए भगवान यहाँ के लोगों को प्रेरणा दें। ऐसी प्रेरणा आप दिलवाइये ऐसी जाहिर सभा में मैंने प्रार्थना की थी। तो यह हम सबको सोचने की बात है कि हम किधर जा रहे हैं। गांधीजी ने हमें जो कुछ सिखाया है उस सिखावन में, उसके अमल करने में हमारी ताकत कहाँ तक जुट रही है? यह सोचने का आज का दिन है। मुझे लगा कि नीचे की सतह पर चिन्तन नहीं हो सकेगा। तो डूंगर पर चढ़ गया। वहाँ भगवान की प्रार्थना की और आज सुबह एक शांतिसैनिक का नाम मुझे मिल गया था उसका आधार लेकर मैंने वहाँ शान्तिसेना के विषय में बात की ऐसी ही सभा पिछले साल आज के दिन हुबली में हुई थी। वहाँ भी एक पहाड़ पर हम चढ़े थे। वहाँ कर्नाटक के ३०-३५ भाई-बहनों ने शांतिसैनिक की प्रतीज्ञा की थी। भगवान सूर्यनारायण को साक्षी में वह काम हुआ था। ऐसा ही आज का दिन है। एक नाम मुझे दिया गया था उसके आधार पर मैंने बातें की और फिर से भगवान से प्रार्थना की। हिन्दुस्तान की सेवा निष्काम भाव से, निरन्तर करने वाले शांतिसैनिक मिल जायँ तो हिन्दुस्तान की तरक्की होगी। वह शांतिसैनिक हिन्दुस्तान के हर घर से परिचित होगा ऐसे कुछ लोग यहाँ निर्माण हो ऐसी प्रार्थना की थी। उसके बाद मुकाम पर आया तो छः लोगों ने नाम दे दिए। खैर, अच्छा आरम्भ हुआ।

मुझे आज शान्तिसेना के बारे में ज्यादा कहना नहीं लेकिन इतना ही कहना था कि गांधीजी आये और गये और हमारे चिन्तन का स्तर, राजनैतिक चिन्तन का स्तर, आर्थिक और सामाजिक चिन्तन का स्तर, सब क्षेत्र में पुराना रहा और सारा दारोमदार सेना, पुलिस और राजतंत्र और सरकार पर ही रहा तो गांधीजी के आने से क्या फायदा हुआ ? यह नहीं कि सरकार की जिम्मेवारी हमें उठानी ही नहीं चाहिए वह तो उठानी ही चाहिए और हमने वह उठा भी ली है ठीक ही किया है । परन्तु उतने से अहिंसा नहीं आयगी। आज विज्ञान के युग में बहुत बड़ी माँग यह है कि करुणा का स्रोत फूट निकलें और अहिंसा एक दासी न रहे, राज्ञी बने । दण्ड-शक्ति के राज्य में अहिंसा रहे यह तो आज तक चला ही है । राज्य दण्डशक्ति का रहा उसके रूप अलग अलग रहे । अभी (Democracy) का रूप आया है लेकिन फिर भी राज दण्डशक्ति का है, अहिंसा पहले भी थी और आज भी है। लेकिन वह दासी है । जैसे मैं बहुत बार कहता हूँ युद्ध में सेना की सेवा करने के लिए लोग जाते हैं उसमें करुणा और दया है । परन्तु वह करुणा युद्ध को समाप्त नहीं कर सकती है । युद्ध में रुचि पैदा कर सकती है। युद्ध के पाप को घटाकर वह युद्ध को एक तरह से बल देती है । वह करुणा तो पहले भी थी। और आज तक है। अगर वह भी नहीं होती तो हम जानवर ही होते ।

गांधीजी क्या चाहते थे?

गांधीजी चाहते थे वह यह करुणा नहीं है, बल्कि ऐसी करुणा वे चाहते थे जो राज्ञी, रक्षक हो, इसके आधार पर मानव समाज बने, बन सकता है, हम बना सकते हैं ऐसा विश्वास मानव को हो। और धीरे-धीरे दंडशक्ति क्षीण हो जाय और आखिर उसका परिवर्तन दूसरे रूप में हो। धीरे-धीरे क्षीण होती चली जाय और स्वतंत्र लोकशक्ति करुणा-मूलक, साम्य पर आधारित लोकशक्ति बढ़े। एक जमाना आगे आयेगा जबकि करुणा राज्ञी बने। वह जमाना जल्दी आना चाहता है । अगर उसके लायक हम जल्दी नहीं बनते हैं तो आज नष्ट होने की नौबत आई है। विज्ञान ने जो साधन पैदा किये हैं उसके साथ अगर अहिंसा जुट जाय तो स्वर्ग आयेगा । विज्ञान ने जो साधन पैदा किये हैं उसके साथ हिंसा जुड़ जाय तो मानव जाति का विनाश होगा। हम ऐसी गलतफहमी में न रहें कि हम विज्ञान को नहीं चाहते हैं। मेरा दावा यह है कि विज्ञान को अधिक से अधिक चाहने का हक मुझे है। दूसरे जो विज्ञान को चाहते हैं, वे नाहक चाहते हैं। परंतु सर्वोदय सेवक का ही विज्ञान पर हक है। विज्ञान पर अहिंसा का ही अधिकार है। इसलिए हम विज्ञान को खूब चाहते हैं। हम पैदल यात्रा करते हैं, तो कोई पूछता है कि यह दकियानूसी विचार है। ऐसे ही सवाल लोग पूछते थे। कोई पूछते थे कि जैनी हैं क्या ? परमेश्वर की कृपा है कि आठ साल के बाद कोई ऐसे सवाल नहीं पूछते हैं और पदयात्रा की आवश्यकता आज मानी गयी है । प्रचार के काम के लिए पदयात्रा आवश्यक है यह बात मान्य हो रही है। विज्ञान का जमाना तो है ही इसलिए विज्ञान युग में पदयात्रा ही टिकनेवाली है। या तो जैसा मैंने कहा था हवाई जहाज टिकेंगे । बीच के जो साधन हैं वे धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे । एक बाजू ग्रामरचना होगी दूसरी बाजू विश्वव्यवस्था होगी। बीच के राष्ट्र, प्रांत आदि नहिवत्, नाश्तिवत् होंगे। एक विश्व-संस्था और दूसरी ग्राम-संस्था। दोनों के बीच जोड़ने वाले जो प्रांत, एवं जिले हैं वे एक-एक करके कम होंगे। नाम मात्र रहेंगे। जैसे वेद ने कहा है "विश्वं पुष्टम् ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्" यह हमारे ग्राम में परिपुष्ट विश्व का दर्शन है। ग्राम का दर्शन हो ऐसा नहीं कहा, भारत का दर्शन हो ऐसा भी नहीं कहा। दुःख रहित, रोग रहित, समग्र विश्व का दर्शन हमारे इस गाँव में हो ऐसी प्रार्थना की है। गाँव विश्वरूप हो, विश्व का प्रतिनिधि हो। इधर विश्व उधर ग्राम। इसलिए इधर हम जय ग्रामदान कहते हैं और उधर जय-जगत कहते हैं। बीच के जोड़ने वाले जो हैं वे कमजोर होंगे। और ये दोनों बलवान, मजबूत होंगे ऐसी करुणा मूलक साम्य की समाज रचना करने के लिए विज्ञान का बहुत उपयोग होगा और इस जमाने में पदयात्रा वैज्ञानिक साधन समझा जायगा। और हमने वह शुरू किया है। विज्ञान के दूसरे भी साधन हैं, आणविक साधन उसका उपयोग हम अहिंसा में करेंगे। यह आज के जमाने की आवश्यकता है। आज के जमाने की माँग भी है। अहिंसा और विज्ञान जुड़ जाय, अहिंसा और करुणा की समाज पर सत्ता हो। उस बीच दण्ड की आवश्यकता रहेगी, परन्तु राज्ञी करुणा होगी और लाचारी से कहीं दण्ड रहा तो रह सकता है । आज हालत यह है कि दण्ड-शक्ति का राज्य है और उसमें करुणा और अहिंसा दासी के तौर पर है। शायद वह खत्म भी हो सकती है और उसके साथ-साथ मानव भी। उससे भिन्न करुणा का राज हो और उसमें दण्ड-शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जाय और करुणा ही करुणा दुनिया में रहे। ऐसा एक स्वप्न मैं देख रहा हूँ, मानता हूँ कि किसी विचार को किसी मनुष्य का नाम देना गलत है फिर भी अगर इस विचार को नाम देना ही है। तो मैं इसे गांधी, विचार कहूँगा, मैं नाम देना नहीं चाहता परन्तु आज मैं उनकी स्मृति में बोल रहा हूँ इसलिए यह कहता हूँ ।

आप मुझे मदद दें।

रविशंकर महाराज मुझसे १०-१५ साल उम्र में बड़े हैं। टीले पर हम जा रहे थे तब वे बोले कि चढ़ने के बाद अनूठा दर्शन हुआ, स्वच्छ हवा मिली और शान्ति भी मिली। तो चढ़ने का सार्थक हुआ और वैसे ही हमारे इस आरोहण कार्य में होने वाला है। कहने लगे कि स्वराज्य का काम लेने का था यह देने का है। इसलिए यह उससे भी कठिन है। यह आरोहण है इसलिए तकलीफ होगी। परंतु जब ऊपर चढ़ेंगे तब परमानंद का दर्शन होगा ऐसा वे बोलते थे। उनके मुख से भगवान की वाणी प्रकट हुई।

मेरे भाइयो, आपके लिए मैं क्या कहूँ ? जैसे हवा, पानी सबको मिलना चाहिए, वैसी जमीन भी सबको मिलनी चाहिए। किसी को हवा मिलने में या किसी के पानी पीने में हम रुकावट नहीं डालते हैं, वैसे जमीन देने में भी रुकावट नहीं डालनी चाहिए। जमीन भगवान की ही है इसलिए वह सबको हासिल होनी चाहिए। मैं जानता हूँ भारत में जमीन कम है। कितनी भी हो वह सबकी है और सबको मिलनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि ऐसी ग्राम व्यवस्था हो कि जिसमें भूमि की सेवा का मौका सबको मिले।

भाइयो, आपके लिए ही मेरी यह यात्रा चल रही है। आज के दिन यहाँ जो बहनें और भाई आये हैं जिनके ज्ञान का स्तर हमने देखा। जिनको गांधीजी के बारे में कुछ भी मालूम था, जिनके लिए गांधीजी मरे और जिए। उन्हीं के लिए मैं जी रहा हूँ। वैसा मेरा प्रयत्न हो रहा है, ऐसा मैं आपको आश्वासन देता हूँ।

गांधीजी के साथी यहाँ आये हुए हैं। मुझमें असंख्य दोष हैं वाणी के, बरतन के, संभव है कि विचार के भी..... मैं जरा

रुक गया। वाणी में तो दोष जरूर है, उसको शुद्धि करने का मैं प्रयत्न करूँगा। बरतन में जो दोष है, उसकी भी शुद्धि करने का काम मैं करूँगा। उसमें मैं बहुत सफल होने वाला नहीं हूँ। शरीर के साथ बरतन जुड़ा हुआ रहता है। बहुत ज्यादा फ़रक मैं कर सकूँगा यह संभव कम है। फिर भी मैं कोशिश करूँगा। विचार में भी मैं दोष नहीं रहने दूँगा। मेरे विचार में मेरापन नहीं रहा है। यह विचार तो असंख्य महापुरुषों से अनेक शास्त्र वचनों से परिपुष्ट होकर मुझे मिला है। उसपर अमल करने की पचास साल से मेरी प्रवृत्ति रही है। इसलिए उसमें दोष रहा है ऐसा मुझे भास नहीं होता है फिर भी संभव है कि कुछ दोष हो तो उसे मैं दूर करूँगा। वाणी और बरतन के दोष असंख्य हैं। लोगों से यह मैं ज्यादा देख सकता हूँ। जो गांधीजी के साथी हैं वे मेरे भी साथी हैं। वे मुझे अत्यन्त उदार दिल से क्षमा करें और मेरे लिए यह प्रार्थना करें कि इस शख्स की खामियों का असर समाज पर न हो और उसकी जो खूबियाँ हैं उसका ही समाज पर असर हो। मैं नहीं चाहता कि खामियों का भी असर हो ताकि इस काम के लिए तकलीफ न होगी। परन्तु मेरी खामियों से समाज बचे और खूबियाँ शतगुणित हो के समाज को पहुँचे ऐसी कोशिश वे करें। और जितनी मदद वे दे सकते हैं वे दें, मैं उनसे ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

◆◆◆

सरकारी कर्मचारियों के साथ

काया (राज०) ३०-१-'५९

पक्ष मुक्त सेवा हो !

विकास योजना के सेवकों के साथ हमें कई बार बातचीत करने का मौका मिला है। खास करके तमिलनाड में उनके साथ बहुत ही बड़े पैमाने पर मुलाकातें होती थी। यहाँ भी हमें वैसा अवसर मिल रहा है। इससे प्रसन्नता होती है।

विकास योजना के सेवकों को मैं सेवक ही कहता हूँ। सेवक यानी सर्वोदय-सेवक। हम पक्ष-मुक्त समाज बनाना चाहते हैं। आज की सरकार पक्ष पर खड़ी है। चुनाव में भिन्न-भिन्न पक्ष के लोग खड़े होते हैं। उनमें से किसी एक पक्ष की सरकार बनती है। हम इस पद्धति को स्वीकार नहीं करते, इसीलिए जनशक्ति खड़ी करके पक्ष-मुक्त समाज बनाना चाहते हैं। आप लोग भी पक्ष-मुक्त समाज के हैं। इस कारण आप और हम बिल्कुल नजदीक हैं। आप लोग चाहे काँग्रेस को मानते हों या पी० एस० पी० को, कम्युनिस्टों को मानते हों या किसी और को, लेकिन सरकारी सेवक होने के नाते पक्ष-मुक्त होकर काम करें, यही अपेक्षा आपसे रखी गई है।

जो लोग निर्वाचित होते हैं और राज्य चलाते हैं वे अखिल भारत के सेवक हैं। इसलिए उन्हें अखिल भारत के लिए ही सोचना चाहिए। फिर भी उन लोगों के दिमाग में पक्ष का अस्तित्व रह सकता है, किन्तु जो कर्मचारी हैं उन्हें तो पक्षमुक्त होना ही चाहिए। कर्मचारी जनता के पास पहुँचें। किसी प्रकार का जातिभेद, पंथभेद, भाषा भेद, पक्षभेद आदि ध्यान में लिए बिना सब की सेवा करें। इस दृष्टि से आप हमारी समाज के लोग हैं। सर्वोदय-समाज में हम आपको सम्मिलित मानते हैं। यह खुशी की बात है कि आपके निर्वाह की चिन्ता सरकार करती है। इसलिए आपका पूरा समय हमें मिलना चाहिए।

मैंने तमिलनाड में देखा कि वहाँ के विकास योजना के प्रमुख लोग हमारे काम में लगे हुए हैं और बहुत अनुकूल वायुमंडल तैयार करते हैं। साहित्य प्रचार करते हैं। वे स्वयं सर्वोदय साहित्य पढ़ते हैं, तथा दूसरों को समझाते हैं। जहाँ जहाँ ग्रामदान होते हैं, वहाँ वहाँ वे मदद के लिए भी प्रस्तुत रहते हैं। उन्होंने बहुत ही उत्साह बताया। वे वास्तव में जनता की सेवा करना चाहते हैं। इसलिए उनका मुझपर भी अच्छा असर रहा।

सब सेवक एक होकर काम करें

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने नौकरों से सारे भारत का सर्वे करवाया था। इंग्लैण्ड के हित में भारतके हितों को न्योछावर करने के लिए वह सर्वे हुआ, उससे सारे राष्ट्रका भयंकर शोषण हुआ। अब हम जाग गये हैं। आजादी का स्वतन्त्र मूल्य हमने समझा है। इस समय एक बार फिर हमें सर्वे करना होगा। वह इसलिए कि हम भारत के सारे देहातों को अपने पाँवों पर खड़ा कर सकें। पहले अपने गाँव-गाँव में उद्योग चलते थे, अंग्रेजों ने उन्हें तोड़ा। गाँवों में गाँवों की पंचायतें थीं, वह भी छिन्न भिन्न कर गाँव का स्वातन्त्र्य छीन लिया। अब हमें फिर से सभी उद्योग खड़े करने हैं। समस्त गाँवों को स्वावलंबी बनाना है। ग्राम स्वराज्य कायम करना है। इसका आरंभ गाँवों में जो सबसे नीचे की श्रेणी में हैं, दुःखिया हैं, उन्हें ऊपर चढ़ाने की प्रक्रिया से करना होगा। आप इसे बुनियादी काम समझ कर सेवा करें।

अक्सर उत्पादन-वृद्धि से ही सब कुछ ठीक मान लिया जाता है, लेकिन उत्पादन वृद्धि से नीचेवालों के जीवन स्तर में कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए आपको उत्पादन बढ़ाया जाय, इसके साथ-ही-साथ उसका लाभ भी दुःखी लोगों को मिले, वैसी योजना करनी चाहिए।

कम्युनिटी प्रोजेक्ट के मंत्री श्री डे० ने हमसे कहा था कि हम गरीबों को मदद देना चाहते हैं, मगर दे नहीं पाते हैं। हमारी मदद उनको ही मिलती है, जो हमसे मदद खींच सकते हैं। अपनी ताकत से मदद खींचने की क्षमता अभी गरीबों में नहीं है। इसलिए आपके ग्रामदान कार्य से हमारी विकास योजना के लिए बड़ा अनुकूल वातावरण तैयार होता है और हम गरीबों को भी सीधी मदद पहुँचा सकते हैं। समग्र विकास के लिए आपके विचार का व्यापक प्रचार किया जाय। आज जो आपके कुछ 'पाकेट्स' बने हुए हैं, वे सारे राष्ट्र में फैलने चाहिए। अभी जहाँ कुछ जगह यह कार्य चल रहा है, वहाँ हमारी ओर से विशेष सहुलियत मिल जायगी। आपके माध्यम से हम गरीबों तक पहुँच सकते हैं, इसलिए अब आपको व्यापक बनना चाहिए।

'येलवाल-परिषद' के बाद इस पर मैंने एक व्याख्यान दिया था। उसमें मैंने कहा था कि सर्व-सेवा-संघ पर अब यह उत्तर दायित्व आता है कि अब जितनी 'एक्सन सर्विस' और 'विकास-योजना' व्यापक बनने जा रही है, उतना वह भी व्यापक बने। दोनों को सहकार करने में सहुलियत रहेगी। तो सर्व-सेवा-संघ या यहाँ समग्र-सेवा-संघ जो कि सर्व-सेवा-संघ की शाखा है,के कार्यकर्ता और आप दोनों मिलकर आगे बढ़ें' तथा एक दूसरे को पूरा सहयोग दें और दोनों मिलाकर एक ही कार्यकर्ता हैं—ऐसा समझें। आप इसके लिए पूरी तरह से सर्वोदय विचार समझें, साहित्य का सम्यक् अध्ययन करें, हिन्दी और अंग्रेजी भूदान पत्रिकाओं के ग्राहक बनें, लोगों के पास साहित्य पहुँचायें एवं उनके भी अध्ययन की समीचीन व्यवस्था करें।

आय का हिस्सा समाज को दें

इसके अतिरिक्त मेरा एक और नम्र निवेदन है। यद्यपि आप लोगों को जो वेतन दिया जा रहा है, उसे मैं बहुत ज्यादा नहीं मानता हूँ। फिर भी जो कुछ मिलता है, उसी में से मैं सम्पत्तिदान चाहता हूँ। आपके घर में जितने सदस्य हैं, उनमें मुझे एक ओर सम्मिलित मान लें और मुझे बराबर अपना हिस्सा देते रहें। आपके परिवार में पाँच लोग हैं, तो मुझे छठा समझ लीजिए। छह हैं, तो सातवें हिस्से का सम्पत्तिदान मुझे मिलना चाहिए। आपको घरवालों से पूछकर प्रसन्नतापूर्वक यह अंश मुझे देना चाहिए।

उस सम्पत्तिदान का उपयोग कार्यकर्ताओं के निमित्त किया जायगा। ग्रामदानी गाँवों में मदद पहुँचाने के काम में भी उसका विनियोग किया जा सकता है।

आप सम्पत्तिदान देंगे तो सब लोगों को आत्म-प्रत्यय हो जायगा कि ये भी हमारे सेवक हैं। यह ग्रामदानी सेवक है।

यह समग्र सेवा संघ का सेवक, यह सरकारी सेवक है, तो यह अमुक सेवक, ऐसे चिप्पी लगानेवाले भेद भी अब मिटने चाहिए। मैं इन भेदों को मिटाना चाहता हूँ। इसके वास्ते ये चार बातें करनी होंगी।

(१) गाँवों को सक्षम बनाने के लिए देश का सर्वे।
(२) समस्त लोगों के साथ पूरा सहकार।
(३) सर्वोदय-साहित्य का गहरा अध्ययन।
(४) सम्पत्ति दान।

आप समाज-सेवा के लिए ही नियुक्त किये गये हैं। सरकार का तो आप पर विश्वास है ही, मैं चाहता हूँ कि जनता का भी आप पर विश्वास बैठे। सरकार और समाज दोनों का विश्वास आप अर्जित कर सकते हैं। संस्कृत में एक कहावत है। जिसका भावार्थ यह है कि सरकार और समाज, दोनों को प्रिय हो, वैसे कार्यकर्ता दुर्लभ होते हैं। आप वैसे कार्यकर्ता बन जायँ—यही मेरी कामना है।

जन शक्ति तैयार करने का मार्ग

सरकार कुछ काम कर सकती है, कुछ काम नहीं कर सकती है। सरकार की मर्यादा होती है। कुछ काम जनता ही कर सकती है। अतः मैंने सरकार को शून्य की उपमा दी है और जनता को एक की। जनता और सरकार दोनों मिलकर दस होते हैं। १+०=१० दोनों को अलग-अलग किया जाय तो सरकार की शक्ति शून्य है और जनता की एक। दोनों के सम्मिलित हो जाने से दस हो जाते हैं। मैं जनशक्ति प्रकट करना चाहता हूँ। सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम इसी तथ्य का द्योतक है। देश में शान्ति स्थापना के लिए हर घर से मुट्ठी भर अनाज सबसे छोटे बच्चे के हाथ से सर्वोदय-पात्र में डाला जाय। इस विचार को आप उत्तेजन दें। यह ऐसा विचार नहीं है, जिसमें दबाव आ सकता है। ग्रामदान-भूदान प्राप्त करने में दबाव की संभावनाएँ हैं। वह काम आपकी शक्ति से बाहर का हो जायगा। भूदान-ग्रामदान प्राप्त करने के बाद आप मदद कर सकते हैं, लेकिन प्राप्त करने में मदद नहीं कर सकते हैं। किन्तु सर्वोदय-पात्र का विचार आप घर-घर जाकर कह सकते हैं। राष्ट्रपति से इसके लिए आप को संकेत भी प्राप्त हो गया है।

जामनगर की सार्वजनिक सभा में मैंने यह कहा था कि हमारे राष्ट्रों में प्राणों का संचार कहाँ है? अगर वैसा होता तो देशवासियों ने जिस रोज यह सुना कि राष्ट्रपति भवन में सर्वोदय-पात्र रखा गया है, उसी दिन राष्ट्र के हर घर में सर्वोदय-पात्र रख दिया जाता। लेकिन नहीं रखे गये। आज भी सर्वोदय-पात्र के लिए मुझे घूमना पड़ता है। समझाना पड़ता है।

राष्ट्रपति ने क्या एक व्यक्ति के नाते सर्वोदय-पात्र रखा? व्यक्ति के नाते तो उन्होंने पचास साल तक सेवा की है। उनसे अब कुछ भी नहीं लेना है, देश को उन्होंने बहुत दिया है। व्यक्ति के नाते ही यदि कुछ देना होता तो वे अपने बिहार के घर में सर्वोदय-पात्र रख लेते लेकिन उन्होंने देहली में रखा है। यह क्या है? यह एक इशारा है। सर्वोदय में इशारों से काम होना है। यह अगर हम समझते तो जिस दिन हमने अखबारों में पढ़ा, मैं उम्मीद करता हूँ कि आपने तो पढ़ा ही होगा, उसी दिन कुल भारत के हर घर में सर्वोदय-पात्र रखे जाते। इसलिए मैंने उस दिन अयुबखाँ की उपमा दी। अयुबखाँ आया और करांची में दूध में पानी मिलाना बन्द हो गया। अयुबखाँ की आज्ञा होते ही करांची का पानी दूध में मिलने से डरने लगा। जो ताकत हिंसा में है वह अहिंसा में है यह सिद्ध होगा तब अहिंसा की शक्ति पैदा होगी। अयुबखाँ का हुक्म जो कर सकता है वह इशारा मात्र कर सकता है ऐसा जब होगा तब अहिंसा की शक्ति प्रकट होगी। अहिंसा में जबरदस्ती नहीं हो सकती। जो कुछ भी हो, ऐच्छिक ही हो सकता है। कुछ भी लाजमी नहीं हो सकता। इच्छापूर्वक अमुक काम करो, इतना अहिंसा में कह सकते हैं, नहीं करोगे तो दण्ड मिलेगा ऐसा अहिंसा में नहीं कह सकते हैं। अहिंसा का सेनापति यही कहेगा कि यह मेरी माँग है इसे अच्छा लगे तो पूरी करियेगा। वैसा इशारा दिया और लोगों ने फौरन कर दिया तब तो अयुबखाँ की जरूरत नहीं रहेगी। यह जब तक नहीं होगा तब तक अहिंसा नहीं पनपेगी। हिंसा में यह शक्ति है। फलानी जगह संकट है तो हजार पुलीस को भेज सकते हैं लेकिन सर्वोदयवाले हजारों को नहीं भेज सकते हैं यह नहीं होगा तब तक अहिंसा पनपेगी नहीं, हिंसा ही पनपेगी। इसलिए जामनगर में मैंने बहुत तीव्रता से कहा था कि राष्ट्रपति का इशारा व्यर्थ गया।

अब यह काम आप कर सकते हैं। जगह जगह जा कर लोगों को समझा सकते हैं कि सर्वोदय-पात्र अच्छा है, उसमें से सेवक-सेना तैयार होगी। हम तो ऊपर से आते हैं, लेकिन वे तो आपमें से ही निकलेंगे इस वास्ते आपके दुःख भी उनके सामने आप प्रकट कर सकेंगे। हम तो मदद पहुँचा सकते हैं लेकिन हृदय की बात तो वे जानेंगे। यह एक दुर्लभ भाग्य है। वैसे सेवकों के लिए आप सर्वोदय-पात्र रखें। इस तरह आप सबको समझायें।

महिलाओं को मुक्त कीजिए

कहने में खुशी होती है कि आप लोगों ने मुझे जगह-जगह बहुत सहकार दिया है, खास करके तमिलनाड में। वहाँ साहित्य भी खूब जाता है। यहाँ राजस्थान में भी बहुत अनुकूलता है। सरकार की तरफ से किसी प्रकार की कोई प्रतिकूलता नहीं है। इससे ज्यादा मुझे नहीं कहना है। सरकार की एक मर्यादा है। सरकार के काम में Coercion आ जाता है इसलिए जितनी सहानुभूति मुझे तमिलनाड में मिली, उतनी राजस्थान सरकार बताती है इससे ज्यादा अपेक्षा मैं नहीं करता हूँ। यहाँ जो वातावरण है उसमें जिस ढंग में मैंने बताया, उस ढंग में अगर मुझे सेवा मिलेगी तो बड़ी भारी ताकत भारत को मिलेगी।

और एक बात!

आप लोगों की माँ, पत्नी, कन्या, बहन मुझे सुपुर्द हो जानी चाहिए याने उनका पूरा सहयोग मुझे इस काम में मिलना चाहिए। पुरुष लोग नौकर हैं, वो तो नौकर नहीं है। इसलिए उनकी सेवा

सर्वोदय समाज को मिलनी चाहिए। वे सर्वोदय समाज की सदस्य ही बन जाय, शांति सैनिक बन जाय। वे पूरा समय दे सकती हैं, घर-घर जा सकती है, सर्वोदय-पात्र, ग्रामदान, भूदान का विचार समझा सकती है और प्राप्त भी कर सकती है। कुल का कुल महिलावर्ग मुझे प्राप्त हो जाय तो उनके आधार से मैं दुनिया में क्रांति करूँगा। ऐसा होता भी है। बड़े बड़े अधिकारी की पत्नियाँ समाज सेवा में भाग लेती हैं। इंग्लैण्ड अमरीका में तो ऐसा रिवाज ही है। हमारे यहाँ स्त्रियाँ घर में काम करती हैं, खास करके बाहर नहीं आती हैं। आप अगर उनको प्रेरणा दें, तो वे आपसे ज्यादा सक्रिय हो सकती हैं। और शांतिसैनिक भी बन सकती हैं। स्त्रियों के अन्दर प्रवेश आप करना चाहें तो मुश्किल होता है अतः स्त्रियों को आगे आना चाहिए। आप ऐसी प्रेरणा देंगे तो हमें स्वतन्त्र कार्यकर्ता मिल जायेंगे।

प्रश्न— सर्वे Survey में क्या करना पड़ेगा ?

विनोबाजी—गाँव में जो कच्चा माल है उसका पक्का बनाने में क्या-क्या सहूलियत है वह नोट करके कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बने ऐसी योजना करनी चाहिए। सबसे नीचे जो हैं उनको काम देने की योजना सर्वे में होनी चाहिए।

◆◆◆

पिपलोद (पंच महाल) २१-१०-'५८

जीवन-साधना की दिशा में मौन का महत्त्व

[विनोबाजी बहुत सबेरे उठकर यात्रा के लिए चल देते हैं। चलते-चलते उनकी ज्ञानगंगा बहती ही रहती है। सूर्योदय के समय वे अक्सर रास्ते में एकान्त-निर्जन स्थान देखकर बैठ जाते हैं और मौन-प्रार्थना करके अपना चिन्तन प्रकट करते हैं। ता० २०-१०-'५८ को पद-यात्रा में उन्होंने जीवन में मौन के महत्त्व पर विचार प्रस्तुत किये थे। उन्हीं विचारों को अग्रिम रूप देते हुए उन्होंने आज भी पद-यात्रियों के सन्मुख अपना चिन्तन व्यक्त किया। वह यहाँ दिया जा रहा है। सं०]

वाणी से मौन श्रेष्ठ है

आज कल लोगों को लंबे-लंबे व्याख्यान सुनने की आदत पड़ गयी है। किन्तु मूलतः हमारा समाज लंबे-लंबे व्याख्यानों का आदी नहीं था। हमारी पद्धति 'उपनिषद्-पद्धति' था। याने उप=पास में बैठकर बातें की जायँ। ये बातें अखबारों में छपने की चीज नहीं, हृदय में छाप पड़ने की चीज थी और इसी को मानता हूँ।

आज के अखबारी युग में जो कुछ कहा जाता है, उसका दुनिया के देशों पर कोई बड़ा असर नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, आप देखेंगे कि आज के बड़े-से-बड़े लोगों द्वारा लिखा गया वाङ्मय सभी लोग पढ़ते भी नहीं हैं। उपनिषद्, योगसूत्र, गीता आदि साहित्य काफी समय बीतने के बाद भी आज तक चल रहा है और आगे भी चलेगा। यह साहित्य कायम रहेगा, क्योंकि यह अनुभव पर अधिष्ठित है। इसमें कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अनुभवों को अभिव्यक्ति मिली है। आज कल तो सर्वथा विपरीत ही हो गया है। अनुभव कुछ नहीं होता। होता भी है, तो पैसा भर और व्याख्यान लंबे-चौड़े चलते हैं। उनकी रिपोर्टें बनती हैं। दस दिन पहले की रिपोर्ट नहीं चल पाती, वह ताजी-से-ताजी होनी चाहिए। जैसे शाक-भाजी ताजी चाहिए, वैसे ही रिपोर्ट भी ताजी चाहिए। पाँच दिनों की बासी शाक चल नहीं सकती। वही हालत आज की इन रिपोर्टों की है। लेकिन उपनिषद् आदि प्राचीन वाङ्मय में जीवन का मसाला ऐसा होता है, जो कभी पुराना होता ही नहीं। प्रतिक्षण वह ताजा ही रहता है, क्योंकि उसके मूल में आत्मा का अनुभव होता है।

यन्त्र से व्यवधान या शान्त जीवन !

मैं इस तरह सतत घूमता रहता हूँ, यह तो अच्छा ही है। लेकिन लंबे-लंबे व्याख्यान देता हूँ और इन यन्त्रों का उपयोग करता हूँ, इससे प्रचार तो जल्दी होता है, पर वह स्थायी नहीं हो पाता है। इसलिए मैं अत्यधिक आत्मनिरीक्षण भी किया करता हूँ। खासकर मेरा पिछला वर्ष पूरा आत्म निरीक्षण में ही बीता। अभी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया हूँ, फिर भी विचार के अनुसार बहुत-सा आचार शुरू हो गया है। बहुत से पत्रों का मैं उत्तर ही नहीं देता, सैकड़ों पत्र आते हैं, उनमें से दो-चार का ही जवाब देता हूँ। यद्यपि जो प्रवाह चल रहा है, उसे रोकना नहीं चाहता, फिर भी मुझे सतत यही लगता है कि गहरी क्रान्ति की जड़ें गहराई में ही पहुँचनी चाहिए। ऊपर-ऊपर की मिट्टी में रहकर ये फल-फूल सकेंगी और न इनमें अंकुर भी ही फूट सकेंगे। अतः मुझे मौन का विचार अच्छा लगता है।

लोगों को जब राम का उद्घोष करते देखता हूँ, तो उसका मुझ पर कुछ भी असर नहीं होता। वे एक तरफ तो रामधुन लगाते हैं और दूसरी तरफ बातचीत भी करते जाते हैं। यह राम-नाम लेने का सही तरीका नहीं है। राम का नाम लेते समय सारे लोगों को शान्त हो जाना चाहिए।

अब लोग भगवान के नारे लगाने के साथ-साथ रामधुन भी लाउडस्पीकर पर चलाने लगे हैं। शास्त्रकारों ने कहा है कि अत्यन्त ध्यानपूर्वक राम का नाम लिया जाय, तो वह मुक्ति का साधन बन सकता है। राम-नाम में इतनी शक्ति भरी पड़ी है कि किसी के मुँह से वह सहज ही निकल जाय, तो उसे तार देता है। फिर तो इसी वचन के आधार पर लाउडस्पीकर को भी तर जाना चाहिए, यदि वह रामनाम का उद्घोष करता है! अब तो फोनोग्राफ की चूड़ियाँ भी बन गयी हैं, जो भजन गाती हैं। ध्यान, अवधान की कोई जरूरत ही क्या रह जायगी ? यदि मुँह से निकलने के साथ ही मुक्ति मिल जाती हो, तो फोनोग्राफ को भी मोक्ष मिल जाना चाहिए ! नाम स्मरण, चिन्तन, भजन आदि की जरूरत ही नहीं पड़ती।

आज कल सब कुछ इतना यांत्रिक बन गया है कि कुछ कहा ही नहीं जा सकता। यहाँ और अन्य प्रान्तों में भी मैंने देखा है, जाड़े के दिनों में मेरे लिए स्वागतद्वार तो बना दिये जाते हैं, पर भोर में कोई आदमी वहाँ खड़ा नहीं रहता। अधिक से अधिक एक आध गैस बत्ती लटका दी जाती है। इस तरह ऊपर-ऊपर स्वागत भी हो जाता है और लोगों के काम में भी कोई बाधा नहीं आ पाती, उनकी नींद चलती रहती है। और सन्त का स्वागत ही हो जाता है ! इस तरह लोक-परलोक दोनों सध जाते हैं। ऐसा सारा यांत्रिक ही चल रहा है।

इसीलिए आज का कार्यकर्ता वर्ग उतना गहरा असर नहीं डाल पाता, जितना कि आश्रम के जीवन में पड़ता था।

मैं मानता हूँ कि आज के साधन बहुत—बहुत अच्छे हैं। मैं विज्ञान का भक्त हूँ, इसीलिए कहता हूँ कि 'भूमिपुत्र' पत्र घर-घर पहुँचना चाहिए। मैं विज्ञान के प्रसार को रोकना नहीं चाहता। फिर भी यही कहूँगा कि जहाँ तक आत्मनिरीक्षण और आत्मशुद्धि का सवाल है, जीवन में ऐसा समय खोजना

चाहिए, जब कि परिपूर्ण शान्ति और एकान्त मिल सके। एकांत का अनुभव किया जा सके। इसका यह अर्थ नहीं कि समय व्यर्थ गँवाया जाय, पूर्ण ध्यानस्थ होने का ही प्रयत्न करना चाहिए, यही उसका तात्पर्य है। इस तरह कुछ ध्यान और कुछ जनसंपर्क चलता रहेगा, तभी इस युग में मानव का मस्तिष्क स्थिर हो सकेगा और उसके हाथों काम हो सकेगा। इसलिए प्रार्थना मौन पूर्वक ही हो, तो अच्छा है।

प्रार्थना की पद्धति को विकसित करें

अब कल की बात को आगे बढ़ाऊँगा। बापू के जमाने में बहुत-सी प्रार्थनाएँ चलीं। प्रार्थना में जो श्लोक बोले जाते थे, उनमें से बहुत-से श्लोकों को मैं जानता हूँ। फिर भी कितने ही श्लोक ऐसे हैं, जिनका मैं कभी भी उच्चारण नहीं करता। मैंने उन्हें कभी भी प्रार्थना के योग्य नहीं माना। पहले और अन्तिम तीन श्लोकों को स्वाभाविक ही प्रार्थना का मूल्य प्राप्त था, लेकिन शेष सांप्रदायिक जैसे ही थे। यदि शास्त्रों का अच्छा अर्थ निकालने की कला और रुचि हो, तो इन श्लोकों से भी अच्छा अर्थ निकाला जा सकता है, लेकिन मुझे उनका विशेष आकर्षण नहीं था। फिर भी मैं उन्हें श्रद्धापूर्वक कहता रहा। आगे चलकर बापू से इस विषय पर चर्चा चली कि इन्हें प्रार्थना में रखा जाय या निकाल दिया जाय? तो यह कहकर उन्हें जारी रखा गया कि 'जो चल पड़ा, वह चालू ही रखना चाहिए!'

जब मैं जेल में गया, तो मैंने सुबह की प्रार्थना में ये सारे श्लोक छोड़ दिये और ईशावास्योपनिषद् का अपना बनाया हुआ गद्यानुवाद ही पढ़ता रहा। उन दिनों मेरा उसी पर चिन्तन चलता था। मुझपर जितना गीता का असर है, उतना ही उपनिषदों का भी है। मेरी उस प्रार्थना में कई लोग शामिल हुआ करते थे। शाम की प्रार्थना में गीता के श्लोक तो मुझे बहुत ही पसंद थे, अतः उन्हें वैसा ही रहने दिया। यह जब बापू थे, तभी से शुरू हो गया था। फिर जब जेल से छूटा, तो पवनार आश्रम में भी मैं यही ईशावास्य बोलता रहा।

बहुतों का यह मत है कि सारे हिन्दुस्तान में एक ही प्रार्थना होनी चाहिए। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। प्रार्थना अपने लिए, जीवात्मा के लिए सबसे बड़ी गहरी चीज है। अतः जिसे जो भाषा सूझे, उसी में प्रार्थना की जानी चाहिए। यदि अशिक्षित लोगों को संस्कृत की भाषा बोलना और समझना कठिन होता है, तो संतों की वाणी का भी उसमें उपयोग किया जा सकता है। इस तरह यदि कोई अपने-अपने अनुकूल वचन बोलता है, तो मुझे कोई हर्ज नहीं। सारे भारत में या सारी दुनिया में एक ही प्रार्थना चले–यह एकता की अजीब भावना मुझे अच्छी नहीं लगती। एकता तो अन्दर की होनी चाहिए। प्रार्थना में बाह्य एकता की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रार्थना के विषय में मुझे किसी वचन-विशेष आग्रह भी नहीं है।

यही कारण है कि जब मैं मेव मुसलमानों का काम कर रहा था, तो कुरान से ही वचन पढ़ता और गीता का उर्दू तर्जुमा बाँचता था। भजन भी उर्दू ही गाता था। जो समाज को सहज ही समझ में आ जाय, वही मुझे अच्छा लगता है। स्वयं मैं संस्कृत का अत्यन्त प्रेमी हूँ और मुझपर उसका पूरा प्रभाव है। उसकी प्रभावकारिता कुछ विलक्षण ही हुआ करती है। फिर भी मैंने मराठी में प्रार्थना चलायी, जब कि बापू का आग्रह था कि प्रार्थना संस्कृत में ही होनी चाहिए। एक दिन बापू का पत्र आया कि अब तो मैं 'जीताई' की ही शरण आ गया हूँ। संस्कृत का तो काफी आग्रह रखा, पर सभी ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते। अतः लाचार होकर मराठी में ही प्रार्थना शुरू कर दी है। मैंने उन्हें उत्तर भेजा कि यह ठीक ही है। इसमें कोई दोष है, ऐसा मैं नहीं मानता। संस्कृत की अपनी जो योग्यता है, उसमें कोई कमी नहीं आती। हम जो प्रार्थना करते हैं, उसे भगवान समझ पाये और हम समझे ही नहीं यह ठीक नहीं है। बापू की प्रार्थना तो अजीब ही रही उसमें 'नम्यो हो रेंगे क्यों' यह बुद्धों का, मुसलमानों का, ईशावास्य के श्लोक, पारसियों का भी कुछ हो तो वह भी रहता। फिर भजन भी ऐसे होते, जिन्हें दूसरे कोई समझ न पाये। फिर रामधुन होती। उपस्थित जनता उसे कुछ भी समझ न पाती थी, फिर भी मान लेती थी कि कुछ ऐसा काम चल रहा है, जिससे भगवान को सन्तोष होता है। आखिर भगवान ऐसा कैसा है, जो हमें न समझनेवाली बात समझ लेता है?

बचपन में मेरे यहाँ एक ब्राह्मण रखा गया जो वेद संस्कार, सन्ध्यावन्दन आदि सिखलाया करता था। बहुत ही कम दिनों में मैं उसे सीख गया। माँ कहने लगी 'विन्या! तूने तो तीन ही दिनों में संध्या सीख ली!' मैंने कहा: 'माँ! तू इतना ही जानती है या और भी कुछ? मैं सन्धावन्दन नहीं करता, लेकिन बड़ी निष्ठा के साथ रामदास के 'मनांचे श्लोक' बोलता हूँ। सुबह स्नान करते समय यह कहा ही जा सकता है।' माँ ने कहा: 'तू सन्ध्या नहीं करता, पर ये श्लोक अच्छी तरह कहता है, तो वह तो निश्चित ही ठीक है। सन्ध्या मेरी समझ में न आये और फिर भी मैं उसे बोलता रहूँ, यह मैं नहीं चाहता। तभी से मुझे लगा कि मातृभाषा में प्रार्थना करनी चाहिए।

बापू की प्रार्थना में तो दो-चार धर्म भाषा वाले बैठे हों, तो सब कुछ खिचड़ी जैसी हो जाती है। थोड़ा इसका थोड़ा उसका लेने से सबका समाधान नहीं हो सकता। पहले जपोजी कहा जाय, फिर कुरान, फिर और कुछ ऐसा सब था। उसमें भगवान को राजी करने की जगह आदमियों को ही राजी करने का विचार मुख्य रहा। मानव भी भगवान का ही रूप है, इस तरह देखें, तो यह भी कुछ अनुचित नही कहा जा सकता। लेकिन मैं तो कभी भी 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम' नहीं कहता था। लोग जब मुझ से पूछते हैं कि आप यह क्यों नहीं कहते, तो मैं कहता हूँ कि जो लोग झगड़ा करते हैं, उनका नाम मैं नहीं लेना चाहता।

मौन के लिए समय निकालें

यही सब सोच-विचारकर मुझे लगा कि मौन प्रार्थना ही इससे अधिक श्रेष्ठ है। उससे सभी का समाधान हो सकता है और गहरे से गहरा अर्थ निकल सकता है। मौन प्रार्थना में किसी भी तरह का दोष नहीं है। हाँ मौन के योग्य मन विकसित होना चाहिए। छोटे बच्चों को भी यदि हम इसकी आदत डालें, तो उन्हें भीतर से काफी बल मिलेगा। मैं यह अपने अनुभव से कह रहा हूँ। उनसे कोई बात करायें और वे उसे थोड़ा समझें और थोड़ा न भी समझें, तो भी उसका काफी असर होता है। अतः उनपर मौन का असर भी हो ही सकता है। इसलिए कार्यकर्ताओं को चाहिए कि घर में और बाहर भी मौन के लिए समय निकालें। १०-५ मिनट बिलकुल ही शान्त हो जायँ। मन से सभी विचार निकालकर केवल भगवान का स्मरण ही करें, तो उन्हें काफी लाभ होगा।

प्रार्थना के लिए निश्चित समय तय होना चाहिए। काम, चर्चा, सभा, पढ़ना, लिखना आदि सभी प्रवृत्तियाँ प्रार्थना के समय बन्द कर देनी चाहिए। घंटी बजने के साथ ही सारी प्रवृत्तियों को समेटकर अन्तर में लीन हो जाना चाहिए। निश्चित समय पर सामूहिक प्रार्थना मन से सभी विकारों को हटा देती है। सुबह पद-यात्रा के समय भी, सूर्योदय के समय पाँच मिनट

मौन प्रार्थना कर लेने के बाद ही मैं कुछ बोलता था। लेकिन अब लम्बा चलना पड़ता है, इसलिए वह चल नहीं पाता है। फिर भी जाड़े के दिनों में ऐसा करने में कोई हर्ज नहीं है। दस पाँच मिनट रास्ते में खड़े रह कर मौन प्रार्थना करें, शान्त रीति से खड़े रहें, तो काफी लाभ होगा। ◆◆◆

पद-यात्रियों के साथ ३१-१-'५९

बापू का सही स्मरण

आज का ही दिन था। हुबली पड़ाव। पिछले साल हम लोगों ने एक टीले पर बैठकर शान्ति-सेना की प्रतिज्ञा की थी। कर्नाटक के ३०-३५ लोगों ने भी वह प्रतिज्ञा स्वीकार की थी। उस दिन की स्मृतियाँ आज ताजा हो रही हैं। उस दिन हम टीले पर थे, आज पहाड़ की चोटी पर हैं। उस रोज शान्ति-सैनिक मिले, आज भी उस संख्या में वृद्धि हुई है।

अभी रविशंकर महाराज कह रहे थे कि स्वराज्य में लेने की बात थी, अब देने की बात है। इसलिए यह आरोहण है। जैसे अभी हम पहाड़ पर चढ़े। चढ़ने के बाद खुली हवा, मुक्त गगन और उन्मुक्त आनन्द की उपलब्धि होती है, वैसे ही आरोहण का परिणाम होगा। जब तक ऊपर चढ़ते हैं, तब तक काफी तकलीफ होती है। गीता में कहा है :

"आरुरुक्षोः मुनेर्योगं, कर्म कारण मुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव, शमः कारणमुच्यते॥"

जिसे ऊपर चढ़ना है, उसके लिए कर्म साधन है। याने उसे परिश्रम करना पड़ेगा, बहुत मेहनत उठानी पड़ेगी। योग पर्वत पर आरूढ़ होने से वह शान्त हो जायगा। जहाँ शान्ति आई, वहाँ परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। वैसा ही इस भूदान आरोहण में हमें अनुभव आयेगा। यह बात स्वराज्य में नहीं थी। वह आन्दोलन लेने का था। यह बात सोचने लायक है। स्वराज्य का आन्दोलन लेने का था, उसका अर्थ यह नहीं है कि उस समय कम त्याग करना पड़ा। त्याग कम नहीं करना पड़ा। लोगों ने बहुत त्याग किया। लेकिन बापू की यह विशेषता थी कि उन्होंने लेने के साथ साथ देना भी जोड़ दिया। आज विचार करने से यह चीज ध्यान में आती है कि स्वराज्य के साथ रचनात्मक कार्यों के अनुबन्ध में उनकी कितनी दीर्घ दृष्टि थी। अस्पृश्यता-निवारण, खादी-प्रचार, नयी तालीम, ग्राम-सेवा इत्यादि ऐसी-ऐसी प्रवृत्तियाँ बापू ने प्रारंभ की कि लोग उनका स्वराज्य के साथ कैसे सम्बन्ध बिठाया जाय—यही पूछते रहे! इसके बावजूद भी मुख्य चीज प्राप्ति का कार्यक्रम था। लेकिन अब केवल देने की ही बात है। हरएक को देना है। इस देने का अधिष्ठान अन्तःशुद्धि है।

सूक्ष्म आरोहण की दिशा

आज के दिवस की पुण्य स्मृति में सारे भाई यह प्रतिज्ञा करें कि हम एक-दूसरे का साथ देंगे, संबल देंगे। पाण्डवों की तरह हममें प्रेम रहे और राम-लक्ष्मण सा स्नेह रहे, तो हम अल्प संख्यक होते हुए भी प्रभु का कार्य अवश्य पूरा कर सकेंगे। गतवर्ष शान्ति-सेना की प्रतिज्ञा हुई। मैं सोचता हूँ कि इस समय यह संख्या ५०० तक पहुँच जायगी। हमने ७४ हजार शान्ति-सैनिकों की माँग की है। बापू शान्ति-सेना का काम करना चाहते थे। इस दिशा में वे प्रयत्नशील भी रहे, लेकिन तब लोग नहीं जुट पाये थे, अब उन्हींकी स्मृति का परिणाम है कि देश में इतने शान्ति-सैनिक मिले, एवं मिल रहे हैं। अन्यथा इतने शान्ति-सैनिक कहाँ से आते?

हमने कई बार सोचा है कि हम सर्वोदय-सेवक हैं या रचनात्मक-कार्यकर्ता? जब सब तरह से विश्लेषण करके देखा तो अपने लिए 'शान्ति-सैनिक' कहलाना ही ठीक प्रतीत हुआ। जो-जो काम करना है, वह हम करेंगे, लेकिन सबकी सेवा में उद्यत रहने का जो शान्ति-सेना का विचार है, वह हमारे मन में तथा जीवन में स्थिर होना चाहिए। शान्ति-सैनिक की हैसियत से ही हम भारत की और दुनियाँ की सेवा करेंगे। हमारा कार्य आत्मशुद्धि का साधन बनेगा।

विचार-प्रचार, ग्राम-स्वराज्य की स्थापना, साहित्य-प्रचार, आत्मशुद्धी का प्रयत्न यह सब हम शान्ति-सैनिक के नाते ही करेंगे। जैसे 'वैष्णवजन तो तेने कहिये' ऐसा कहते हैं वैसे 'शान्ति-सैनिक तो तेने कहिये'–ऐसा होगा। उस गीत में इतना फर्क होगा बाकी वर्णन तो वही रहेगा। खास फर्क करने की जरूरत नहीं है। फर्क भी क्यों करें? हम यही सोचते हैं कि वैष्णव के जो लक्षण हैं उन्ही लक्षणों से सम्पन्न पुरुष को गीता ने 'भक्त' नाम दिया है, उसीको हम शान्ति-सैनिक नाम देंगे। 'स्थितप्रज्ञ' तो आदर्श है। वह नाम हम नहीं ले सकते हैं। हम 'स्थितप्रज्ञ' नहीं बन सकते। इसलिए वैष्णव, भक्त और शान्तिसैनिक यह तीन नाम हम दे सकते हैं। 'स्थितप्रज्ञ' नाम तो नहीं देंगे। बाकी के तीनों नाम हमसे दूर नहीं हैं। वैसे हम न होने के कारण वे हमसे दूर होंगे। परन्तु कल्पना से वे दूर नहीं है। 'स्थितप्रज्ञ' दूर है, इसलिए कल्पना में नहीं आता है। शान्ति-सैनिक, भक्त और वैष्णव ये तीन नाम हम रख सकते हैं। इसलिए शान्ति-सेना के नाते हम काम करेंगे। मेरा मानना है कि इस वक्त जितने लोग 'जनवास' के लिए निकल पड़ेंगे ('वनवास' के बदले दूसरा शब्द) उतना अपना यह शान्ति-सेना का विचार भारत जल्दी पकड़ेगा। भारत की भूमिका तैयार हो रही है, यह हमें दीखता है। उसके लिए 'सर्वोदय-पात्र' का कार्यक्रम है।

सतत काम करने की योजना

अकसर तत्वज्ञान चिन्तन, भक्ति-मार्ग, भाव-विकास के लिए होता है। लेकिन दोनों के साथ कार्यक्रम न रहा तो मनुष्य धीरे-धीरे सुस्ताने लगते हैं। मालूम नहीं पड़ता है। लेकिन सतत करने का कार्यक्रम न रहा तो समाज में सुस्ती आती है। यही काम गांधीजी ने किया था। देश के सामने उन्होंने कार्यक्रम रखा था, उस जमाने में जो था, वह रखा था। इस जमाने में नया कार्यक्रम देश के सामने आया है। वह इस जमाने के लायक है। परन्तु कुछ-न-कुछ कार्यक्रम तो लोगों के सामने रखना ही चाहिए।

हम लोगों में से कुछ लोग बोलते हैं कि इष्टांक नहीं रखना चाहिए, हमें यह चीज करनी है ऐसा हो।' हम कहते हैं इष्टांक हो न हो किन्तु हमें अनिष्ट तरीके से नहीं, सही और शुद्ध तरीके से काम करना चाहिए।

◆◆◆

अनुक्रम

१. जीवन ज्योति के द्रष्टा···	काया	३० जनवरी '५९	पृ० १४१
२. पक्ष मुक्त सेवा हो···	काया	३० जनवरी	,, ,, १४४
३. जीवन साधना की दिशा···	पिपलोद	२१ अक्टूबर '५८	,, १४६
४. बापू का सही स्मरण···	काया	३० जनवरी '५९	,, १४८

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (यू० पी०) फोन नं० १३९१
तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।